# स्वदेशी

बात २५ अगस्त २००३ की है। उस जमाने में मैं उधार लेकर चप्पलें पहनता था। कुछ दिनों से चप्पलें उधार पर मिलना बंद हो गयीं थीं। अतः विवश होकर मुझे चप्पल की दुकान पर जाना पड़ा।

बचपन में जब पिताजी मुझे चप्पलें खरीदते थे, तो हमेशा बाटा कंपनी की ही खरीदते थे। पर मुझे कुछ ऐसा भी याद आ रहा था कि कुछ ही साल पहले जूते-चप्पल की छोटी दुकान पर मैंने कम-से-कम दो-तीन कंपनी की चप्पलें देखीं थीं। दुकान की ओर जाते समय अनाड़ियों की तरह यह अनिश्चितता मुझे खा रही थी, कि कौन सी चप्पल अच्छी गुणवत्ता की होगी? दिमाग जब हल्का हो गया तो सोचा, भाड़ में जाए! पिताजी ने जो चुना, वो कुछ सोचकर ही चुना होगा। मैं भी बाटा की ही चप्पलें खरीदूंगा। सोचते हुए मैं दुकान पर जा पहुँचा।

अंदर जाकर मैंने दुकानदार को बाटा की चप्पलें दिखाने को कहा। दुकानदार दो जोड़ी चप्पलें निकाल कर वापस आया, और मुझसे बोला - साहब, आजकल कई सालों से बाटा के अलावा कई अन्य कंपनियों की चप्पलें भी आने लगी हैं। मैं आपको दो जोड़ी चप्पलें दिखा रहा हूँ। एक जोड़ी, जैसा आपने पूछा, बाटा की है। दूसरी जोड़ी लखानी कंपनी की है। दोनों दिखने में एकदम समान हैं। वैसे लखानी चप्पल की एक फैक्ट्री बंगलौर में ही है, अतः स्ट्रैप वगैरह आसानी से मिल जाएंगे। आप पसंद कर लीजिए।

मुझे फिर अनिश्चितता ने आ घेरा। दोनों चप्पलें वाकई में एक जैसी थीं। कौन सी लूं? मैं दोनों के डब्बे पढ़ने लगा। मूल्य पर जब आँखें गयीं, तो देखा कि बाटा की चप्पलें ४६ रुपये की थीं, जबकि लखानी की ४८ रुपये की। पता नहीं कहाँ से दिमाग में विचार कौंधा - बस नखरे बंद कर। सस्ती वाली ले, और चल यहाँ से। मैंने दुकानदार को अपनी पसंद बतायी। दुकानदार झटके से बोला - पर साहब, लखानी की माल बहुत अच्छा है। आप इसे ही खरीदिये। दिमाग में बैठा कीड़ा फिर बोल उठा - सस्ता वाला खरीद। मैंने दुकानदार को मना कर दिया। दुकानदार ने मुझे ऐसी निगाहों से देखा, मानों बड़े कष्ट में कोई किसी को बद-दुआएं दे रहा हो।

इतने बुड्ढे आदमी ने मुझे ऐसे क्यों देखा, यह सोचते हुए, हाथ में बाटा की चप्पलों का डब्बा लिए, मैं वापस जाने लगा। कुछ समझ न आया तो दोनों चप्पलों के डब्बों पर लिखी चीजों को एक-एक कर याद करने लगा। अखिर में, सहसा मुझे समझ में आया - लखानी इत्यादि बाकी सारी कंपनियां भारतीय

हैं, और बाटा, जिसने इतने साल एकछत्र राज्य किया, नन्हे विदेशी। केवल दो रुपये के पीछे मैं गुणवत्ता वाला भारतीय माल लेने से मुकर गया। तभी पता नहीं कहाँ से एक गरीब बच्चा आया, और कागज का एक छोटा तिरंगा थमा जोर-२ से दो रुपये की माँग करने लगा। तमाशा बढ़ते देख मैंने तुरंत ही झंडा खरीद लिया, और देखती हुई जनता के सामने उसे फहराते हुए जाने लगा।

दिमाग में बैठा कीड़ा अब जोर से हंस रहा था। जब उसकी हंसी रुकी तो वह बोल उठा - वाह रे ढोंगी स्वदेशी!